REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

भगत सिंह की पुस्तकों से समाजवादी क्रान्ति का विकास

मधुरिमा
शोध प्रज्ञा, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा.

प्रस्तावना :

भगत सिंह को भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के सबसे प्रभावशाली क्रांतिकारियों में से एक माना जाता है। वो कई क्रन्तिकारी संगठनों के साथ मिले और उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना बहुत बड़ा योगदान दिया था। भगत सिंह जी की मृत्यु 23 वर्ष की आयु में हुई जब उन्हें ब्रिटिश सरकार ने फांसी पर चढ़ा दिया।

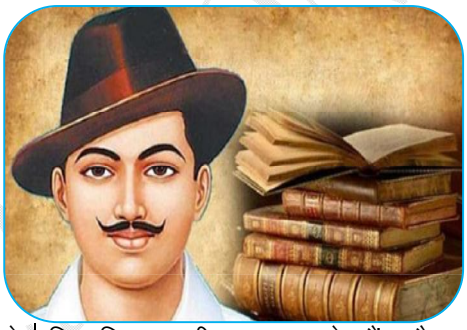

भगत सिंह का जन्म 27 सितंबर, 1907 को लायलपुर जिले के बंगा में हुआ था, जो अब पाकिस्तान में है। उनका पैतृक गांव खट्कड़ कलां है जो पंजाब, भारत में है। उनके जन्म के समय उनके पिता किशन सिंह, चाचा अजित और स्वरण सिंह जेल में थे। उन्हें 1906 में लागू किये हुए औपनिवेशीकरण विधेयक के खिलाफ प्रदर्शन करने के जुल्म में जेल में डाल दिया गया था। उनकी माता का नाम विद्यावती था। भगत सिंह का परिवार एक आर्य–समाजी सिख परिवार था। भगत सिंह करतार सिंह सराभा और लाला लाजपत राय से अत्याधिक प्रभावित रहे।

भगत सिंह यद्यपि रक्तपात के पक्षधर नहीं थे परन्तु वे वामपंथी विचारधारा को मानते थे, तथा कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों से उनका ताल्लुक था और उन्हीं विचारधारा को वे आगे बढ़ा रहे थे। यद्यपि, वे समाजवाद के पक्के पोषक भी थे। कलान्तर में उनके विरोधी द्वारा उनको अपने विचारधारा बता कर युवाओं को भगत सिंह के नाम पर बरगलाने के आरोप लगते रहे है। कॉग्रेस के सत्ता में रहने के बावजूद भगत सिंह को कांग्रेस शहीद का दर्जा नही दिलवा पाए, क्योंकि वे केवल भगत सिंह के नाम का इस्तेमाल युवाओं को अपनी पार्टी से जोड़ने के लिए करते थे। उन्हें पूँजीपतियों की मजदूरों के प्रति शोषण की नीति पसन्द नहीं आती थी। उस समय चूँकि अँग्रेज ही सर्वेसर्वा थे तथा बहुत कम भारतीय उद्योगपति उन्नति कर पाये थे, अतः अँग्रेजों के मजदूरों के प्रति अत्याचार से उनका विरोध स्वाभाविक था। मजदूर विरोधी ऐसी नीतियों को ब्रिटिश संसद में पारित न होने देना उनके दल का निर्णय था। सभी चाहते थे कि अँग्रेजों को पता चलना चाहिये कि हिन्दुस्तानी जाग चुके हैं और उनके हृदय में ऐसी नीतियों के प्रति आक्रोश है। ऐसा करने के लिये ही उन्होंने दिल्ली की केन्द्रीय एसेम्बली में बम फेंकने की योजना बनायी थी।

भगत सिंह चाहते थे कि इसमें कोई खून खराबा न हो और अँग्रेजों तक उनकी श्आवाजश भी पहुँचे। हालाँकि प्रारम्भ में उनके दल के सब लोग ऐसा नहीं सोचते थे पर अन्त में सर्वसम्मति से भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त का नाम चुना गया। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार 8 अप्रैल 1929 को केन्द्रीय असेम्बली में इन दोनों ने एक ऐसे स्थान पर बम फेंका जहाँ कोई मौजूद न था, अन्यथा उसे चोट लग सकती थी। पूरा हाल धुएँ से भर गया। भगत सिंह चाहते तो भाग भी सकते थे पर उन्होंने पहले ही सोच रखा था कि उन्हें दण्ड स्वीकार है चाहें वह फाँसी ही क्यों न होय अतः उन्होंने

भागने से मना कर दिया। उस समय वे दोनों खाकी कमीज तथा निकर पहने हुए थे। बम फटने के बाद उन्होंने 'इंकलाब–जिन्दाबाद, साम्राज्यवाद–मुर्दाबाद!' का नारा, लगाया और अपने साथ लाये हुए पर्चे हवा में उछाल दिये। इसके कुछ ही देर बाद पुलिस आ गयी और दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया।

इतिहास के एक प्रतिष्ठित विद्वान ने पिछले दिनों पूछा। उनका कहना था कि देश के हालात आज इतने बदल चुके हैं कि भगतसिंह ने जो कुछ भी लिखा–सोचा और बयान दिया, वे आज हमारे लिए मार्गदर्शक नहीं हो सकते। फिर क्या यह महज भावनाओं, भावुकता या उत्तेजना के सहारे इतिहास–निर्माण का प्रयास नहीं है, क्या यह भी नायक–पूजा का एक उपक्रम नहीं है?

विगत एक दशक के दौरान भगतसिंह और उनके साथियों के महत्त्वपूर्ण लेखों–वक्तव्यों–पत्रों को अलग–अलग, और संकलनों के रूप में, हम लोग लगातार छापते रहे हैं और भगतसिंह की दुर्लभ जेल नोटबुक को पहली बार हिन्दी में छापने और अब तक उसके कई संस्करण निकालने का काम भी हम लोगों ने ही किया। और अब यह पुस्तक– 'भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज'।

यह सही है कि भगतसिंह और उनके साथियों के विचार–पक्ष के बारे में, देश के शिक्षित लोगों और युवा पीढ़ी के बीच अपरिचय–अज्ञान की एकदम वैसी स्थिति नहीं है जैसी आज से पच्चीस–तीस वर्षों पहले थी। भगतसिंह एक बेहद प्रतिभाशाली और अध्ययनशील क्रान्तिकारी थे, यह जानकारी तो उन्हें भी थी जिन लोगों ने 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' में भगतसिंह के साथ काम कर चुके क्रान्तिकारी जितेन्द्रनाथ सान्याल की पुस्तक 'भगतसिंह' और शिव वर्मा, अजय घोष, भगवानदास माहौर, सदाशिव मलकापुरकर, यशपाल आदि साथियों के तथा सोहन सिंह जोश, राजाराम शास्त्री आदि समकालीनों के भगतसिंह विषयक संस्मरण पढ़े थे। गोपाल ठाकुर की एक छोटी–सी पुस्तिका भी पचास के दशक में ही प्रकाशित हो चुकी थी, जिसमें एच.एस. आर.ए. और नौजवान भारत सभा के घोषणापत्र तथा अदालत में दिये गये बयानों के आधार पर भगतसिंह के गहन वैचारिक पक्ष और वैज्ञानिक समाजवाद की ओर उनके झुकाव के बारे में लिखा गया था। लेकिन उस समय भी नीचे से लेकर ऊपरी कक्षाओं तक की पाठ्यपुस्तकों और स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास की सबसे स्थापित पुस्तकों में एच.एस.आर.ए. और भगतसिंह व उनकी पीढ़ी के क्रान्तिकारियों का उल्लेख अति संक्षेप में, मात्र राष्ट्रवादी सशस्त्र क्रान्तिकारी धारा की एक कड़ी के रूप में ही होता था। एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारी और विशेषकर भगतसिंह किस प्रकार समाजवाद को आदर्श मानने के बाद वैज्ञानिक समाजवाद का गहन अध्ययन कर रहे थे और किसानों–मजदूरों के व्यापक जन–संगठन खड़े करने के बारे में सोच रहे थे, इसका अकादमिक इतिहासकारों की पुस्तकों में उल्लेख तक नहीं होता था और चन्द–एक शोध–पत्रों और शोध–प्रबन्धों के अपवादों को छोड़ दें तो यही स्थिति कमोबेश आज भी बनी हुई है।

आठवें दशक के पूर्वार्द्ध में ही दिल्ली के कुछ युवा क्रान्तिकारी वामपन्थियों ने भगतसिंह के लेखों, बयानों, उद्धरणों का एक छोटा–सा संकलन निकालकर उनके द्वारा मार्क्सवाद को स्वीकार करने और उसका गहन अध्ययन करने का तथ्य रेखांकित किया। अब धीरे–धीरे मात्र "एक वीर क्रान्तिकारी" से अलग भगतसिंह की छवि एक मेधावी, युवा क्रान्तिकारी विचारक के रूप में बनने लगी थी। जब इतिहासकार बिपनचन्द्र ने आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में भगतसिंह का तब तक अनुपलब्ध निबन्ध 'मैं नास्तिक क्यों हूँ?' अपनी भूमिका के साथ प्रकाशित किया तो उनके गहन और अकुण्ठ भौतिकवादी चिन्तन के नये आयाम और नयी गहराई की पहली बार लोगों को जानकारी मिली। भगतसिंह का एक और लेख 'ड्रीमलैण्ड की भूमिका' पहले वीरेन्द्र सिन्धु सम्पादित दस्तावेजों के संकलन में प्रकाशित हो चुका था, लेकिन 'मैं नास्तिक क्यों हूँ?' के साथ यह निबन्ध दुबारा बिपनचन्द्र की परिचयात्मक टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुआ, तो विशेषतौर पर इतिहास और साहित्य के अध्येताओं का ध्यान भगतसिंह की कुशाग्र आलोचनात्मक दृष्टि और उसमें अन्तरनिहित द्वन्द्वात्मकता की ओर आकृष्ट हुआ। इन दो लेखों ने स्पष्ट कर दिया कि अपने छोटे से जीवन के अन्तिम कुछ वर्षों के दौरान भगतसिंह की वैज्ञानिक समाजवाद के प्रति जो प्रतिबद्धता विकसित हुई थी, वह महज भावनात्मक या अनुभवसंगत नहीं थी, बल्कि उसके पीछे गहन–गम्भीर अध्ययन से उपजी, सतत विकासमान वैचारिक समझ मौजूद थी। बिपनचन्द्र के अतिरिक्त सुमित सरकार, इरफान हबीब और हरबंस मुखिया आदि कई प्रतिष्ठित इतिहासकारों ने और क्रान्तिकारी वामधारा से जुड़े कई बुद्धिजीवियों ने भगतसिंह के वैचारिक पक्ष को रेखांकित किया।

शिव वर्मा और भगतसिंह के कई साथियों तथा कई इतिहासकारों द्वारा उल्लिखित इस तथ्य की भी चर्चा यहाँ जरूरी है कि भगतसिंह ने जेल में सतत गहन अध्ययन करने, मुकदमे की कार्रवाई में हिस्सा लेने तथा पत्रों, सन्देशों और विविध दस्तावेजों के लेखन के अतिरिक्त चार पुस्तकें और लिखी थीं।

(1) 'आत्मकथा' (2) 'समाजवाद का आदर्श' (3) 'भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन' और (4) 'मृत्यु के द्वार पर'। इन पुस्तकों की पाण्डुलिपियों के गायब होने की कई रहस्यमय कहानियाँ चलन में रही हैं और माना यही जाता है कि वे नष्ट हो चुकी हैं। लेकिन इस बात से अभी भी पूरी तरह से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जेल नोटबुक की तरह किसी के व्यक्तिगत संग्रह से या किसी अभिलेखागार से सहसा ये पाण्डुलिपियाँ भी बरामद हो जायें। 'भगतसिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज' (2004) के अपने सम्पादकीय निबन्ध में चमनलाल ने बिना किसी तथ्य के और निहायत लचर तर्क के आधार पर एक विचित्र अटकल प्रस्तुत की है। उनका कहना है कि हो सकता है कि इन चार पाण्डुलिपियों का कोई अस्तित्व ही न हो। वह अटकल लगाते हैं कि 'आत्मकथा' और 'मृत्यु के द्वार पर' शीर्षक पाण्डुलिपियाँ डॉन ब्रीन की आत्मकथा का ही प्रारूप हो सकती हैं। 'भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास' उनके अनुसार जेल में रहते हुए लिख पाना असम्भवप्राय था। साथ ही, वह यह भी कहते हैं कि ताख़कक स्तर पर जेल प्रवास के दो साल में चार पुस्तकों का लेखन असम्भव है। यह अटकल विचित्र ही नहीं, बचकानी ओर गैर–जिम्मेदाराना भी है, जिसकी अपेक्षा कम से कम ऐतिहासिक दस्तावेजों का सम्पादन करने वाले किसी व्यक्ति से नहीं की जानी चाहिए। पहली बात तो यह कि भगतसिंह को जब 12 सितम्बर 1929 से लिखने के लिए नोटबुक और पढ़ने के लिए किताबों की सुविधा मिलने लगी थी, तो भला यह सम्भव क्यों नहीं है कि वे जेल में रहकर भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास लिख सकें? बल्कि सम्भावना तो इसी बात की ज्यादा है कि सशस्त्र क्रान्ति की मध्यवर्गीय सोच से आगे किसानों–मजदूरों के जन–संगठन बनाने तथा साथ ही गुप्त क्रान्तिकारी पार्टी बनाने की मार्क्सवादी अवस्थिति तक पहुँचने के बाद समाहारमूलक दृष्टि से भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास लिखने का विचार भगतसिंह के मस्तिष्क में आया हो। जहाँ तक जेल–जीवन के दो वर्षों के जेल–जीवन के दौरान चार पुस्तकों के लेखन को तार्किक दृष्टि से असम्भव मानने की बात है, तो यह तो और अधिक हास्यास्पद है। चमनलाल को साइबेरिया–प्रवास में गये लेखकों–क्रान्तिकारियों से लेकर पूरी दुनिया के इतिहास से दर्जनों ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं, जबकि कई प्रतिभाशाली और लक्ष्य के प्रति एकाग्र व्यक्तियों ने चार नहीं बल्कि दर्जनों जिल्दों में समा पाने वाली गम्भीर और वैविध्यपूर्ण सामग्री का लेखन किया। भगतसिंह जैसे प्रतिभाशाली युवा के लिए यह कदापि असम्भव नहीं था। खासतौर पर तब जबकि जेल–जीवन के दौरान के अध्ययन और अनुभव–विश्लेषण एवं समाहार के द्वारा उनका दृष्टिकोण सुनिश्चित हो चुका था, मुक्ति के रास्ते के बारे में विचार सुनिश्चित शक्ल अखतियार करने लगे थे और वह जानते थे कि उनके पास समय बहुत कम है। भगतसिंह की जेल नोटबुक से उनके गहन अध्ययन का जो आभास मिलता है, उसे देखते हुए भी चार पुस्तकों का लेखन अस्वाभाविक नहीं बल्कि इसके विपरीत अत्यन्त स्वाभाविक लगता है। इस तरह की अटकलबाजी के बजाय बेहतर यही होगा कि हम उन तथ्यों पर भरोसा करें जो शिव वर्मा और कुछ अन्य साथियों ने इस सन्दर्भ में बयान किये हैं। इसी सोच के तहत हम यह नहीं मानते कि भगतसिंह और उनके साथियों के जो दस्तावेज अभी तक उपलब्ध हो सके हैं, उनके अतिरिक्त कुछ छूट नहीं गया होगा। हमारा इस बात पर पर्याप्त जोर है कि आगे भी इस दिशा में खोज का काम सतत जारी रहना चाहिए।

भगतसिंह और उनके साथियों के वैचारिक पक्ष को जन–जन तक पहुँचाने का संकल्प गलदश्रु भावुकता या क्रान्तिकारी परम्परा के प्रति श्रद्धालुता के नाते तो खैर कतई नहीं जन्मा है, इसका उद्देश्य इतिहास की अज्ञात, अल्पज्ञात या विस्मृत परम्परा और वैचारिक विरासत को उद्घाटित करना–मात्र भी नहीं है। भगतसिंह और उनके साथियों का चिन्तन सुदूर अतीत की चीज नहीं है। यह राष्ट्रीय मुक्ति–संघर्ष के उस निकट अतीत की विरासत है, जिसके गर्भ से बाहर आकर आज के भारत का विकास हुआ है।

भगतसिंह ने अपने समय के राष्ट्रीय आन्दोलन पर जो आलोचनात्मक और समाहारमूलक टिप्पणियाँ की थीं, अपने देशकाल की जमीन पर खड़े होकर उन्होंने भविष्य की सम्भावनाओं के बारे में जो आकलन प्रस्तुत किये थे, कांग्रेसी नेतृत्व का उन्होंने जो वर्ग–विश्लेषण किया था, देश की मेहनतवफश जनता के सामने, छात्रों–युवाओं के सामने, और सहयोद्धा क्रान्तिकारियों के सामने क्रान्ति की तैयारी और मार्ग की उन्होंने जो नयी परियोजना प्रस्तुत की थी, उसका आज के संकटपूर्ण समय में बहुत अधिक महत्त्व है जब पूरा देश देशी–विदेशी

पूँजी की निर्बन्ध लूट और निरंकुश वर्चस्व तले रौंदा जा रहा है, जब श्रम और पूँजी के बीच ध्रुवीकरण ज़्यादा से ज़्यादा तीखा होता जा रहा है, जब साम्राज्यवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष (जिसकी भगतसिंह ने भविष्यवाणी की थी) विश्व–स्तर पर ज़्यादा से ज़्यादा अवश्यम्भावी बनता प्रतीत हो रहा है, जब कांग्रेस ही नहीं सभी संसदीय पार्टियों और नकली वामपन्थियों का चेहरा और पूरी सत्ता का चरित्र एकदम नंगा हो चुका है, जब भगतसिंह की आशंकाएँ एकदम सही साबित हो चुकी हैं और जब, भारत की मेहनतकश जनता व क्रान्तिकारी युवाओं को साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद के विरुद्ध एक नयी क्रान्ति की तैयारी के जटिल कार्य में नये सिरे से सन्नद्ध हो जाने का समय आ चुका है।

भगतसिंह के समय के भारत से आज का भारत काफी बदल चुका है। उत्पादन–प्रणाली से लेकर राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक सम्बन्ध और संस्कृति तक के स्तर पर चीजें काफी बदल चुकी हैं। साम्राज्यवादी शोषण–उत्पीड़न आज भी मौजूद है, लेकिन प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन के दौर से आज इसका स्वरूप काफी बदल चुका है। वर्ग–संघर्ष, विगत सर्वहारा क्रान्तियों और राष्ट्रीय मुक्ति–युद्धों के दबाव के चलते तथा अपने भीतर के आन्तरिक दबावों के फलस्वरूप साम्राज्यवाद के तौर–तरीकों में काफी बदलाव आये हैं। राष्ट्रीय–औपनिवेशिक प्रश्न आज हल हो चुका है और राष्ट्रीय मुक्ति–युद्धों में कहीं भागीदार और कहीं नेता की भूमिका निभाने वाला, भूतपूर्व औपनिवेशिक देशों का बुर्जुआ वर्ग आज पूरी तरह से पाला बदलकर साम्राज्यवादी शक्तियों का 'जूनियर पार्टनर' बन चुका है। गाँवों में भी बुर्जुआ भूमि–सुधारों की क्रमिक प्रक्रिया ने भूमि–सम्बन्धों को मूलतः बदल दिया है और नये पूँजीवादी भूमि–सम्बन्धों के अन्तर्गत, पूँजीवादी भूस्वामी बन चुके भूतपूर्व सामन्ती भूस्वामी तथा पूँजीवादी फार्मर बन चुके भूतपूर्व धनी काश्तकार आज गाँव के मेहनतवफशों और छोटे–मँझोले किसानों के शोषक की भूमिका में हैं। मँझोले किसानों की भूमिका उसी प्रकार दोहरी है जैसे शहरों में आज मध्यवर्ग की भूमिका दोहरी बन चुकी है दृ यानी इन वर्गों के ऊपरी संस्तर शासकों के साथ नाभिनालबद्ध हैं जबकि निचले संस्तर मेहनतकशों के करीबी बन रहे हैं। साथ ही गाँव के गरीबों को लूटने में देशी–विदेशी वित्तीय एवं औद्योगिक पूँजी की प्रत्यक्ष भूमिका बन रही है। निचोड़ के तौर पर कहा जा सकता है कि भारत जैसे अगली कतारों के भूतपूर्व औपनिवेशिक देश आज पिछड़े पूँजीवादी देश बन चुके हैं। अब इन देशों के इतिहास के एजेण्डे पर राष्ट्रीय मुक्ति–संघर्ष नहीं बल्कि समाजवाद के लिए संघर्ष है।

लेकिन इन महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के बावजूद, साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध अभी जारी है। और जैसाकि फाँसी से तीन दिन पहले पंजाब के गवर्नर को फाँसी के बजाय गोली से उड़ाये जाने की माँग करते हुए लिखे गये अपने पत्र में भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव ने लिखा थाः "यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति, अंग्रेज शासक अथवा सर्वथा भारतीय ही हों। उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता।" "निकट भविष्य में यह युद्ध अन्तिम रूप में लड़ा जायेगा और तब यह निर्णायक युद्ध होगा। साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद कुछ समय के मेहमान हैं।" यहाँ भगतसिंह की उस प्रखर इतिहास–दृष्टि से हमारा साक्षात्कार होता है जो राष्ट्रीय मुक्ति–संघर्ष को जन–मुक्ति–संघर्ष की इतिहास–यात्रा के दौरान बीच का एक पड़ाव–मात्र मानती थी और साम्राज्यवाद–पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष को ही अन्तिम निर्णायक संघर्ष मानती थी। भगतसिंह ने कई स्थानों पर इस बात पर बल दिया है कि इस निर्णायक विश्व–ऐतिहासिक महासमर का नेतृत्व सर्वहारा वर्ग ही कर सकता है और पूँजीवाद का एकमात्र विकल्प समाजवाद ही हो सकता है। इस मायने में भगतसिंह और एच.एस.आर.ए. के नेतृत्व के युवा क्रान्तिकारी न केवल अपने पूर्ववर्ती सशस्त्र क्रान्तिकारियों से बल्कि अपने समकालीनों से भी काफी आगे थे। आज जब विश्व–स्तर पर पूँजी और श्रम की शक्तियाँ एक नये, निर्णायक ऐतिहासिक युद्ध के लिए आमने–सामने लामबन्द हो रही हैं तो भारत के युवाओं और मेहनतकशों के लिए साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के भविष्य के बारे में भगतसिंह के इस आकलन और भविष्यवाणी का विशेष महत्त्व हो जाता है।

भगतसिंह राष्ट्रीय आन्दोलन में पूँजीपति वर्ग की भागीदारी को जहाँ ढुलमुलपन से भरा हुआ और अन्ततः समझौते की परिणति तक पहुँचने वाला मानते थे, वहीं अध्ययन और अनुभव ने उन्हें मजदूर–किसान संश्रय विषयक इस लेनिनवादी निष्पत्ति के निकट पहुँचा दिया था कि राष्ट्रीय अथवा समाजवादी क्रान्तियों में मजदूर वर्ग का नेतृत्व और उसके निकटतम संश्रयकारी के रूप में किसानों की मौजूदगी ही उनकी सफलता की

गारण्टी हो सकती है। उन्होंने यह स्पष्ट लिखा था, "क्रान्ति राष्ट्रीय हो या समाजवादी, जिन शक्तियों पर हम निर्भर हो सकते हैं, वे हैं किसान और मजदूर।"

अपने उपरोक्त ऐतिहासिक दस्तावेज में भगतसिंह ने युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं को सलाह दी है कि वे मार्क्स और लेनिन का अध्ययन करें, उनकी शिक्षा को अपना मार्गदर्शक बनायें, जनता के बीच जायें, मजदूरों–किसानों और शिक्षित मध्यवर्गीय नौजवानों के बीच काम करें, उन्हें राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित करें, उनमें वर्ग–चेतना उत्पन्न करें, उन्हें संगठित करें, आदि। महत्त्वपूर्ण बात है कि इस दस्तावेज में एक कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण की जरूरत पर बल दिया है जो मुख्यतः पेशेवर क्रान्तिकारियों दृ ऐसे पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं पर निर्भर हो जिनकी क्रान्ति के सिवा न कोई दूसरी आकांक्षा हो, न ही जीवन का कोई दूसरा लक्ष्य।

भगतसिंह और उनके साथी राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति को समाजवाद के लिए संघर्ष के लक्ष्य की दिशा में यात्रा के दौरान बीच की एक मंजिल मानते थे, वे सर्वहारा क्रान्ति के पक्षधर थे और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष को साम्राज्यवाद की विश्व–व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष का एक अंग मानते थे। वे राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी–मात्र न होकर उत्कट अन्तरराष्ट्रीयतावादी थे। भाषाई–जातिगत–धार्मिक संकीर्णता से वे पूरी तरह से मुक्त थे तथा रहस्यवाद और भाग्यवाद की दिमागी गुलामी से छुटकारा पा चुके थे। भगतसिंह की नास्तिकता एक सच्चे वैज्ञानिक भौतिकवादी की नास्तिकता थी।

इस पूरी चर्चा का उद्देश्य भगतसिंह के चिन्तन के उन पक्षों को रेखांकित करना है, जो आज के समय में भी हमारे लिए प्रासंगिक हैं। हम यह नहीं कहते कि भगतसिंह द्वारा सुझाया गया क्रान्ति का रास्ता आज हमारे लिए पूरी तरह से प्रासंगिक है। तबसे अब तक देश के उत्पादन–सम्बन्धों, सामाजिक–आर्थिक संरचना, राज्यसत्ता के चरित्र एवं कार्यप्रणाली तथा साम्राज्यवाद के चरित्र एवं कार्यप्रणाली में महत्त्वपूर्ण बदलाव आये हैं, लेकिन आज की क्रान्ति के युवा हरावलों के लिए भी भगतसिंह के चिन्तन के कुछ पक्ष नितान्त प्रासंगिक हैं। इन्हें यदि सूत्रवत बताना हो तो इस रूप में गिनाया जा सकता हैरू (1) भगतसिंह और उनके साथियों की निरन्तर विकासमान भौतिकवादी जीवनदृष्टि और द्वन्द्वात्मक विश्लेषण पद्धति (2) साम्राज्यवाद के विरुद्ध जारी विश्व–ऐतिहासिक युद्ध के प्रति उनका नजरिया (3) राष्ट्रीय मुक्ति–युद्ध को साम्राज्यवादी विश्व–व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष का अंग मानने तथा समाजवादी क्रान्ति की पूर्ववर्ती मंजिल मानने का उनका नजरिया (4) कांग्रेस और गाँधी के वर्ग–चरित्र का द्वन्द्वात्मक मूल्यांकन और कांग्रेसी नेतृत्व वाली राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्यधारा की तार्किक परिणति का प्रतिभाशाली पूर्वानुमान (5) क्रान्तिकारी आतंकवाद का विश्लेषण के बाद उससे आगे बढ़कर क्रान्तिकारी जन–दिशा पर बल देना, मजदूरों–किसानों को क्रान्ति की मुख्य शक्ति मानते हुए उन्हें संगठित करने पर बल देना तथा एक सर्वहारा क्रान्ति को अपरिहार्य बताना (6) एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा को स्वीकारना और उसके निर्माण को जरूरी बताना (7) धार्मिक–जातिगत–भाषाई कट्टरता का विरोध करना, आदि।

इन्हीं कारणों से हमारा मानना है कि इक्कीसवीं शताब्दी में भगतसिंह को याद करना और उनके विचारों को जन–जन तक पहुँचाने का उपक्रम एक विस्मृत क्रान्तिकारी परम्परा का पुनःस्मरण–मात्र ही नहीं है। भगतसिंह का चिन्तन परम्परा और परिवर्तन के द्वन्द्व का जीवन्त रूप है और आज, जब नयी क्रान्तिकारी शक्तियों को एक बार फिर संगठित होकर साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष की दिशा और मार्ग का सन्धान करना है, जब एक बार फिर नयी समाजवादी क्रान्ति की रणनीति और आम रणकौशल विकसित करने का कार्यभार हमारे सामने है तो भगतसिंह की विचार–प्रक्रिया और उसके निष्कर्षों से हमें कुछ बहुमूल्य चीजें सीखने को मिलेंगी।

परम्परा कभी भी उँगली पकड़कर भविष्य तक नहीं पहुँचाती। वह एक दिशा देती है, बशर्ते कि हम आलोचनात्मक विवेक के साथ इतिहास का अध्ययन करें और अपनी परम्परा की पहचान करें। प्राचीनकालीन लोकायत दर्शन, बौद्ध दर्शन और सांख्य आदि की भौतिकवादी चिन्तन परम्परा हमारी परम्परा है। मध्यकालीन निर्गुण भक्ति आन्दोलन की परम्परा हमारी परम्परा है। आधुनिक काल में राधामोहन गोकुलजी, राहुल सांकृत्यायन और भगतसिंह की विकासमान वैज्ञानिक भौतिकवादी चिन्तन–परम्परा भी हमारी परम्परा है। और यह परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। हम तो यहाँ मात्र कुछ सर्वाधिक आलोकमय शिखरों का नामोल्लेख कर रहे हैं। पूरी दुनिया के साथ ही, अपने देश की इस क्रान्तिकारी विरासत का पुनःस्मरण आज के नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन का आवश्यक कार्यभार है। इतिहास कोई जड़वस्तु नहीं होती। जब भी भविष्य–सन्धान का नया कार्यभार

सामने आता है, जब भी नये सिरे से मुक्ति–परियोजनाओं का निर्माण करना होता है तो एक बार फिर इतिहास का अन्वेषण करना होता है। भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण कृतित्व का अध्ययन इसीलिए आज उनके लिए बहुत जरूरी है जो जन–मुक्ति की नयी परियोजना तैयार करने और उसे क्रियान्वित करने के लिए संकल्पबद्ध हैं।

भगतसिंह की मार्क्सवाद तक की यात्रा एम.एन. राय और अन्य विलायतपलट भारतीय कम्युनिस्ट नेताओं से भिन्न थी। उन्होंने मार्क्सवादी क्लासिक्स का अध्ययन किया और इस प्रक्रिया में विकसित होती हुई दृष्टि से भारतीय समाज और राजनीति का मौलिक विश्लेषण करने की कोशिश की। यह कोशिश चाहे जितनी भी छोटी और अनगढ़ रही हो, पर इसकी मौलिकता और इसके विकास की तीव्र गति सर्वाधिक उल्लेखनीय थी। भगतसिंह और उनके साथियों ने भारत के प्रारम्भिक कम्युनिस्ट नेतृत्व की तरह सोवियत संघ और ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टियों तथा कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के दस्तावेजों में प्रस्तुत विश्लेषणों–निष्कर्षों को आधार बनाकर भारतीय परिस्थितियों को देखने और कार्यभार तय करने के बजाय स्वयं अपनी दृष्टि और अध्ययन के आधार पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद, कांग्रेस, गाँधी आदि के बारे में मूल्यांकन बनाये। अप्रोच की यह मौलिकता विशेष रूप से हमारे देश में उल्लेखनीय है जहाँ बड़ी पार्टियों और अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व का अन्धानुकरण लगातार एक गम्भीर बीमारी के रूप में मौजूद रहा है। इस मायने में भगतसिंह, भगवतीचरण वोहरा आदि की विकास–प्रक्रिया माओ त्से–तुङ और हो ची मिन्ह के अधिक निकट जान पड़ती है जिन्होंने अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व से सीखते हुए भी, अपने–अपने देशों की ठोस परिस्थितियों का स्वयं अध्ययन किया और क्रान्ति की रणनीति, आम रणकौशल और मार्ग का निर्धारण किया। ऐसा सोचने का वस्तुगत आधार है कि यदि भगतसिंह जीवित रहे होते और उन्हें अपनी सोच के आधार पर कम्युनिस्ट पार्टी बनाने या कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होकर उसे अपनी सोच के हिसाब से दिशा देने का अवसर मिला होता तो शायद इस देश के कम्युनिस्ट आन्दोलन का इतिहास, या शायद इस देश का ही इतिहास किसी और ढंग से लिखा जाता।

बहरहाल, आज ऐसा सोचने की एकमात्र प्रासंगिकता यही हो सकती है कि क्रान्तिकारी विचार और कर्म की उस अधूरी यात्रा को एक बार फिर आगे बढ़ाने और अंजाम तक पहुँचाने की बेचैनी से हर प्रगतिकामी भारतीय युवा के दिल को लबरेज कर दिया जाये। भगतसिंह के ही सन्देश को आधार बनाकर जन–जन तक इस सन्देश को पहुँचाना होगा कि यही साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष का वह ऐतिहासिक काल है जिसकी भविष्यवाणी भगतसिंह ने की थी। कांग्रेसी नेतृत्व ने राष्ट्रीय आन्दोलन को आधी सदी पहले एक ऐसे मुकाम तक पहुँचाया, जब पूँजीवादी शासन के रूप में हमें अधूरी, खण्डित और विकलांग आजादी मिली और तबसे लेकर आज तक इतिहास एक अँधेरी सुरंग का दुखदायी सफरनामा बनकर रह गया। अब एक बार फिर, जैसाकि भगतसिंह ने कहा था, हमें "क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज" करनी होगी और साम्राज्यवाद– पूँजीवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्ति का सन्देश कल–कारखानों–झोंपड़ियों तक, मेहनतकशों के अँधेरे संसार तक, हर जीवित हृदय तक लेकर जाना होगा। भगतसिंह का नाम आज इसी संकल्प का प्रतीक चिह्न है और उनका चिन्तन क्षितिज पर अनवरत जलती मशाल की तरह हमें प्रेरित कर रहा है और दिशा दिखला रहा है।

संदर्भ–सूची :

1. अमर शहीद भगत सिंह, वीरेन्द्र सिंधु, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली, संस्करण–1974
2. क्रान्तिवीर भगत सिंह : 'अभ्युदय' और 'भविष्य', संपादक– चमनलाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2012
3. शहीद सरदार भगत सिंह, रामदुलारे त्रिवेदी, त्रिवेदी एंड कंपनी, कानपुर, प्रथम संस्करण–1938 ई०
4. भारत में सशस्त्र क्रांति–चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास, मन्मथनाथ गुप्त, नागरी प्रेस, प्रयाग, संस्करण–1939
5. स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी साहित्य का इतिहास (भाग–दो)